B.A-I Date 13/07/20 Page-1

Paper-I

Unit-5

Dr. Raj Gopal
Assistant Professor (G/P.T)
Department of Philosophy.
V.S.J. College Rajnagar.
Mail ID:- rajgopal7755@gmail.com.

जैन दर्शन का जीव विचार
(Jainism Philosophy Jiva)

जैन दर्शन में आत्मा को जीव कहा जाता है। जीव को जैन दर्शन में सदैव चेतन युक्त माना गया है। चेतना जीव का मूल लक्षण है। जीव की परिभाषा में जैन दर्शन में कहा गया है कि -"चेतना लक्षणो जीवः"। इस प्रकार से चैतन्य के अभाव में जीव की कल्पना नहीं किया जा सकता है। जहाँ न्याय-वैशेषिक दर्शन में चेतना को आत्मा का आगन्तुक गुण माना गया है। आत्मा उनके अनुसार स्वाभावतः अचेतन है। शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से संयुक्त होने पर आत्मा में चैतन्य का संचार होता है। वहीं जैन दर्शन चेतना को आत्मा का स्वाभाविक गुण माना है।

जैन दर्शन में जीव को नित्य एवं अनंत माना गया है। इसका आत्मा संबंधित विचार अन्य नास्तिक दर्शनों (चार्वाक, बौद्ध) के आत्मा संबंधित विचार से भिन्न है। चार्वाक एवं बौद्ध दोनों नास्तिक दर्शन नित्य आत्मा के अस्तित्व को निषेध करता है। चार्वाक दर्शन "चैतन्यविशिष्टः देह एव आत्मा" अर्थात शरीर को ही आत्मा माना है। वहीं बौद्ध दर्शन आत्मा को क्षणिक ~~[illegible]~~ का प्रवाह

एवं पंच स्कन्धों का संघात मात्र मानता है। वहीं जैन दर्शन आत्मा को नित्य चेतन एवं आकारविहीन माना है।

जैन दर्शन में जीव को ज्ञाता, कर्ता एवं भोक्ता माना गया है। जीव ज्ञाता है, वह भिन्न भिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। जीव कर्ता है। वह सांसारिक कर्मों में भाग लेता है। कर्म करने में पूर्णतः स्वतंत्र है। वहीं सांख्य दर्शन आत्मा को अकर्ता एवं निष्क्रिय मानता है। जीव भोक्ता है। जीव अपने कर्मों का फल स्वयं भोगने के कारण सुख और दुःख की अनुभूतियों को प्राप्त करता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव स्वभावतः पूर्ण है। इसमें 'अनन्तचतुष्टय' अर्थात चार प्रकार की पूर्णताएँ पायी जाती है, ये है - अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, और अनन्त आनन्द। उपरोक्त स्वाभाविक गुण केवल मुक्त जीवों में अभिव्यक्त होता है। सांसारिक जीव कर्मफल से बंधे होने के कारण इसमें अनन्तचतुष्टय की संपूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। बन्धनग्रस्त स्थिति में जीव के ये लक्षण केवल तिरोहित हो जाते है, नष्ट नहीं होते है। कर्मजन्य बाधाओं के दूर हो जाने पर जीव में ये लक्षण पुनः प्रकट हो जाते है।

Scanned with CamScanner

जैन दर्शन में जीव को दो भेद किया गया है, मुक्त और बद्ध। पुनः बद्ध जीव के भी दो भेद किया गया है – स्थावर और त्रस।

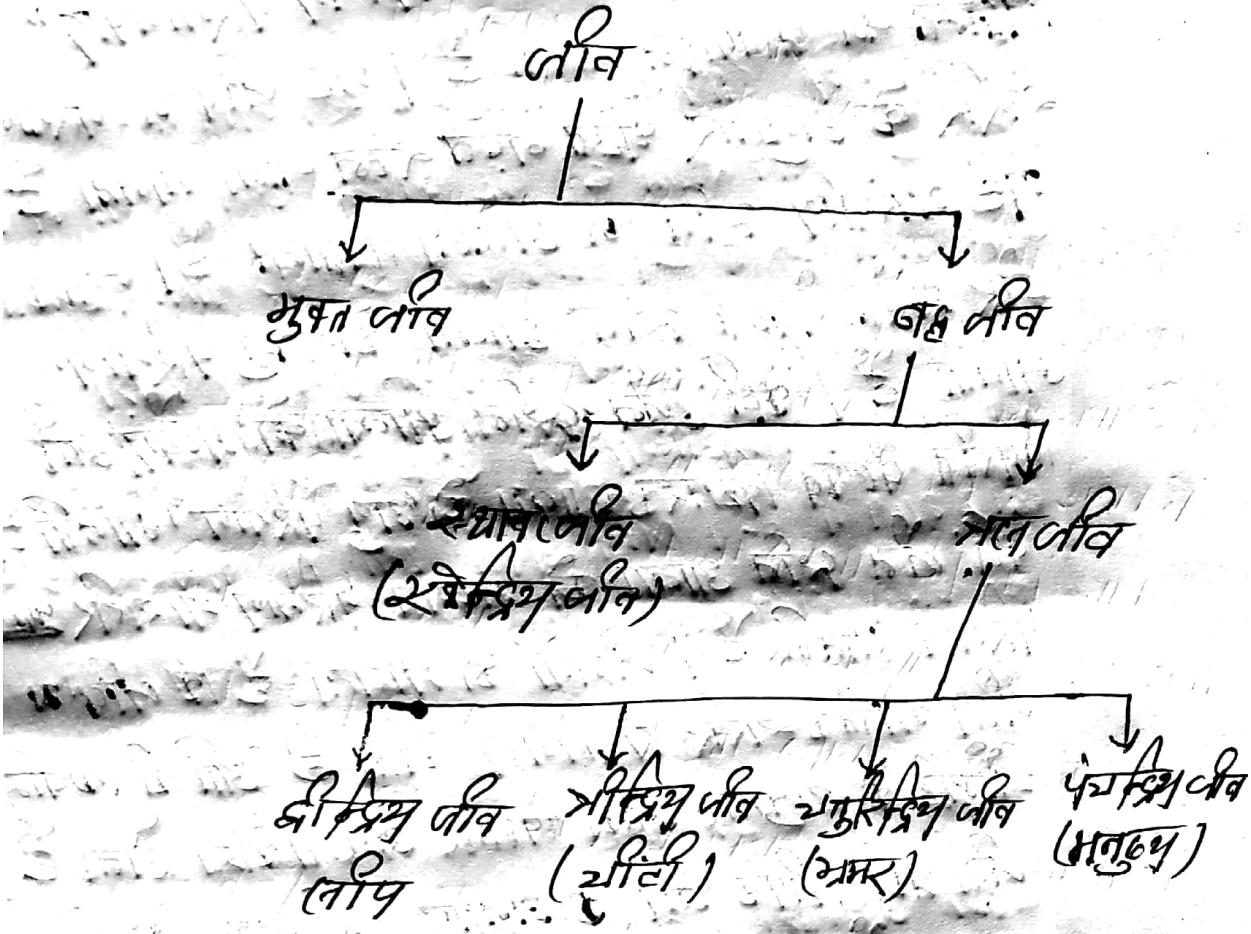

मुक्त जीव में जीव के वास्तविक स्वरूप का प्रकाशन होता है। इनमें अनन्त गुणों पाया जाता है। ये कर्मबन्धन से मुक्त हैं। बद्ध जीव वे हैं जो अब भी कर्म पुद्गलों से आबद्ध हैं। त्रस जीव गतिमान हैं। स्थावर जीवों में गति नहीं है। स्थावर जीवों में जीव के स्वरूप की न्यूनतम अभिव्यक्ति होती है। त्रस जीवों में स्थावर जीवों की अपेक्षा चेतना अधिक विकसित होती है। स्पष्ट है कि जैन दर्शन अनेक जीववाद में विश्वास करता है। इस प्रकार जैन

Scanned with CamScanner

दर्शन वेदान्त दर्शन के एकात्मवाद के विपरीत जीवों की अनेकता का समर्थन करता है।

जैन दर्शन जीव के संबंध में "मध्यम परिमाणवाद" सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह जीव का परिमाण शरीर के अनुसार घटते बढ़ते रहने वाला मानता है। यह भारतीय दर्शन का अनोखा सिद्धान्त है। न्याय और अद्वैत वेदान्त दर्शन आत्मा को 'विभु परिमाण' मानती है। वे इसे सर्वव्यापी मानते हैं। इसके विपरीत वैष्णव विचारक आत्मा को 'अणु परिमाण' मानती है वहीं जैन दर्शन आत्मा को मध्यम परिमाण या शरीर परिमाण मानती है। जैनियों का मानना है कि जीव का जीस भौतिक शरीर से संबंध होता है और जी लम्बाई चौड़ाई के अनुसार उसका विस्तार और संकोच होता है जीस प्रकार दीपक कमरे के अनुसार पूरी जगह को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार जीव जीस शरीर में प्रवेश करता है, वह उसके आकार और रूप को धारण कर लेता है। इस प्रकार से जीव अमूर्त होकर भी मूर्त (आकारिक) माना जाता है। जीव अपने कर्मानुसार (चींटी और हाथी का शरीर धारण करता है, तब उसका परिमाण हाथी और चींटी के परिमाण के समान हो जाता है। इस प्रकार से जीव न तो विभु है न अणु अपितु वह शरीर परिमाणी है।